स्व–निर्देशित अध्ययन सामग्री
Self-Instructional Learning Material

मास्टर ऑफ आर्ट्स (समाजशास्त्र)

एम. ए. (समाजशास्त्र)

अन्तिम वर्ष

समाजशास्त्र का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

(Theoretical Perspectives in Sociology)

(तृतीय प्रश्न पत्र)

दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म.प्र.) - 485334

समाजशास्त्र का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य
(Theoretical Perspectives in Sociology)

संस्करण–2016

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन :
प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

लेखक :
डॉ. राजेश त्रिपाठी
एसोसियेट प्रोफेसर, ग्रामीण प्रबन्धन विभाग

सम्पर्क सूत्र :
निदेशक, दूरवर्ती शिक्षा
दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)
दूरभाष– 07670–265460, इ–मेल– distance.gramodaya@gmail.com, website: www.mgcgvchitrakoot.com

प्रकाशक :
कुलसचिव
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

कापीराइट © : महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र.)

आभार : यह अध्ययन सामग्री संबंधित पाठ्यक्रम और विषय के लिए विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई है। अध्ययन सामग्री को सरल, सुरुचिपूर्ण और बोधगम्य बनाने की दृष्टि से अनेक स्रोतों से प्रेरणा, संदर्भ और सामग्री ली गई है। सभी के प्रति आभार। अध्ययन सामग्री में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। विश्वविद्यालय का इससे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संदेश

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना मध्यप्रदेश शासन द्वारा एक पृथक अधिनियम से 1991 में सुप्रसिद्ध समाजसेवी पद्मविभूषण नानाजी देशमुख के प्रेरणा और प्रयासों से चित्रकूट में मंदाकिनी के तट पर हुई। विश्वविद्यालय का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक मानव संसाधन तैयार करना है। विगत 25 वर्षों की समर्पित सेवाओं में विश्वविद्यालय ने ज्ञान–विज्ञान के विविध आयामों पर अपने शिक्षा, शोध, प्रशिक्षण और प्रसार कार्यों से छाप छोड़ी है।

ग्रामीण क्षेत्र में संसाधनों के अभाव तथा सामाजिक–पारिवारिक परिस्थितियों के कारण निरंतरता से अध्ययन करने में बाधायें आती हैं। विश्वविद्यालय ने इस समस्या के समाधान के लिए गुणवत्तायुक्त दूरवर्ती शिक्षा को प्रत्येक ग्रामीण के घर–आँगन तक पहुँचाने का संकल्प लिया है। विश्वविद्यालय का दूरवर्ती अध्ययन एवं सतत शिक्षा केन्द्र इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील है।

मुझे प्रसन्नता है कि दूरवर्ती शिक्षा के विद्यार्थियों को स्वनिर्देशित अध्ययन सामग्री मुद्रित और व्यवस्थित रूप में पहुँचाये जाने का यह प्रयास न सिर्फ दूरवर्ती शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ायेगा बल्कि छात्रों को गहराई से अध्ययन करने की दिशा में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रो. नरेश चन्द्र गौतम
कुलपति

समाजशास्त्र का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य
(Theoretical Perspectives in Sociology)

इकाई प्रथम :

- समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की प्रकृति
- समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में आधुनिक प्रवृत्तियाँ
- सिद्धान्तीकरण के स्तर, सिद्धान्त और शोध में अंतः सम्बन्ध
- संरचनात्मक प्रकार्यवाद
- रैडफ्लिफ ब्राउन का प्रकार्यवाद
- पारसंस का संरचनात्मक – प्रकार्यात्तम दृष्टिकोण
- जे0फ्री0 अलेक्टजेण्डर का प्रकार्यवाद

इकाई द्वितीय :

- संरचनावाद एवं उत्तर संरचनावाद
- मानव प्रकृति एवं सांस्कृतिक भिन्नता
- सी0सेवी स्ट्रांस उत्तर संरचनावाद की विशेषताएँ

इकाई तृतीय :

- संघर्ष के सिद्धान्त
- संघर्ष का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप एवं कारण
- मार्क्स का वर्ग संघर्ष
- रेन्डाल कोलिन्स– संघर्ष का सामाजिक परिवर्तन
- कोजर का सिद्धान्त
- संघर्ष का प्रकार्यवाद

इकाई चतुर्थ :

- आलोचनात्मक सिद्धान्त एवं मार्क्सवाद
- फैन्क्रफुर्त स्कूल
- जुर्गेन हैबरमास के प्रमुख विचार
- ए0 ग्राम्सी – "अधिपत्य" या "प्राधान्य"
- अंतः क्रियावादी दृष्टिकोण
- प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद
- जार्ज हरबर्ट मीड का प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद
- हरबर्ट ब्लूमर का प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद

इकाई पंचम :

- समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में आधनिक प्रवृत्तियाँ
- एन्थेनी गिडेन्स– संरचनाकरण सिद्धान्त।

इकाई–1

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त (Sociological Theory)

NOTES

मनुष्य को किसी न किसी रूप में जीवन निर्वाह और साथ–साथ कार्य करने की समस्याओं पर चिन्तन करना ही पड़ा है। जिसे हम संस्कृति कहते हैं। वह सामान्यतः इन्हीं समस्याओं का हल ढूँढने के प्रयासों का परिणाम है। स्पष्ट है कि मनुष्य ने आरम्भ से ही अपने आस–पास की घटनाओं व समस्याओं के संबंध में सोचना–विचारना आरम्भ कर दिया था। संस्कृति के कतिपय अंग जैसे आदिकालीन धर्म, नातेदारी व्यवस्था, सरकार आदि आदिकालीन मानव के इन विषयों के सम्बन्ध में कुछ न कुछ क्रमबद्ध विचार का प्रतिनिधित्व करते हैं। सम्भवतः सामाजिक विचारधारा का सूत्रपात यहीं से होता है।

यद्यपि प्राचीन सभ्यताओं के सामाजिक दर्शनशास्त्रियों को पूर्णतः कल्पना बिहारी एवं अयथार्थवादी मानना गलत होगा, फिर भी उनकी अपनी कुछ सीमाएँ थी। ये सीमाएँ तब दूर हुई, जब ज्ञान–विज्ञान के विस्तार तथा यातायात व संचार के साधनों में उन्नति के कारण विभिन्न अनुभवों एवं विविध आदर्श वाले लोगों के समीक्षात्मक सांस्कृतिक सम्पर्कों के फलस्वरूप विभिन्न समाजों का तुलनात्मक अकेलापन दूर हो गया। फलतः तुलनात्मक निरीक्षण, सम्भावित निरपेक्षों का संघर्ष एवं संदेह व अविश्वास की छाया, इन सबके एक साथ मिलने के सामाजिक सिद्धान्त की प्रथम झलक दिखाई देने लगी।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Socilogical Theories)

किसी भी सामाजिक घटना के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर निकाला गया ठोस, वैज्ञानिक एवं अनुभव सिद्ध निष्कर्ष ही समाजशास्त्रीय सिद्धान्त कहलाता है। समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की परिभाषा निम्नलिखित विद्वानों ने इस प्रकार से की है–

मर्टन के अनुसार – "समाजशास्त्रीय सिद्धान्त वे वैज्ञानिक निष्कर्ष हैं जिनका सम्बन्ध किसी सामाजिक घटना या घटना समूह से होता है।"

केपलन के अनुसार– "सिद्धान्त एक प्रतीकात्मक निर्माण है।"

पारसन्स के अनुसार– "सिद्धान्त कथनों के निर्माण तथा उनके परस्पर तार्किक अन्तर्सम्बन्धों से इस प्रकार सम्बद्ध है कि उसके माध्यम से कथनों का आनुभविक सत्यापन हो सकता है जो कि स्वयं आनुभविक तथ्यों पर आधारित है।"

NOTES

समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्रीय सिद्धान्त वे वैज्ञानिक निष्कर्ष होते हैं जिनके आधार पर सामाजिक व्यवहार या सामाजिक व्यवस्था से सम्बनधित आनुभंविक या प्रयोगसिद्ध सामान्यीकरण ज्ञात किया जा सके। अर्थात् समाजशास्त्रीय सिद्धान्त किसी सामाजिक घटना से सम्बन्धित होता है एवं उसका प्रतिपादन वास्तविक निरीक्षण, वर्गीकरण के आधार पर किया जाता है।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की विशेषतायें (Characteristics of Sociological Theories)

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त वे यथार्थ, व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक निष्कर्ष होते हैं जिन्हें किसी सामाजिक घटना के आनुभविक परीक्षण के आधार पर प्राप्त किया जाता है। जैसे– "कार्यरत महिलाओं को कार्यरत पुरूषों की तुलना में अधिक शोषण का सामना करना पड़ता है।" एक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त कहा जा सकता है। समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित रूप से स्पष्टतः देखा जा सकता है–

1. समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के अमूर्तीकरण की भावना पायी जाती है।
2. समाजशास्त्रीय सिद्धान्त सम्बन्धित समाजिक घटना का पूर्ण परिचय प्रदान करने में समक्ष होते हैं।
3. प्राप्त तथ्यों एवं उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का परीक्षण सम्भव है।
4. कभी–कभी तथ्यों के अभाव में भी सिद्धान्त निर्माण सम्भव है।
5. प्रत्येक समाजशास्त्रीय सिद्धान्त व्यवहारिक दृष्टि से उपयोगी होगा। कुछ सिद्धान्तों का निर्माण विषय–विस्तार के लिये भी किया जाता है।
6. एक सिद्धान्त का निर्माण करने के लिये अनेक अवधारणाओं का सहारा लिया जाता है। ये अवधारणाएँ तार्किक रूप से एक दूसरे से जुड़ी होती है।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की प्रकृति (Nature of Sociological Theory)

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त की प्रकृति को मर्टन ने लिखा है– "समाजशास्त्रीय सिद्धान्त शब्द का बहुल प्रयोग समाजशास्त्री कहलाने वाले व्यावसायिक समूह के सदस्य द्वारा लिये गये परस्पर सम्बन्धित किन्तु स्पष्ट क्रिया–कलापों की सभी उपजों को बताने के लिये किया जाता है। परन्तु इन क्रिया–कलापों की सभी उपजों को समाजशास्त्रीय सिद्धान्त मान लेना उचित न

होगा क्योंकि इन क्रिया–कलापों का वैज्ञानिक प्रकार्य एक–दूसरे से बहुत भिन्न है एवं प्रयोग सिद्ध सामाजिक शोध पर इनका प्रभाव भी अलग–अलग ही है। मर्टन ने प्रमुखतः छः प्रकार के कार्यों को एक साथ जोड़कर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त बना लिया जाना बताया है। ये छः कार्य निम्नलिखित हैं– NOTES

1. अध्ययन–पद्धति
2. सामान्य समाजशास्त्रीय अभिविन्यास
3. समाजशास्त्रीय अवधारणों का विश्लेषण
4. तथ्योत्तर समाजशास्त्रीय व्याख्याएँ
5. समाजशास्त्र में आनुभविक या प्रयोग सिद्ध सिद्धान्त
6. समाजशास्त्रीय सिद्धान्त

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के प्रतिपादन में ये सब सहायक आधार हो सकते हैं, पर ये स्वयं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त नहीं हैं। न तो अध्ययन–पद्धति को, न समाजशास्त्रीय अवधारणा को और न ही तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या को हम समाजशास्त्रीय सिद्धांत कह सकते हैं।

परन्तु इस संदर्भ में समाजशास्त्री कोहेन ने यह लिखा है कि सभी समाजशास्त्रीय सिद्धान्त इस प्रकार के नहीं होते। कुछ परिशुद्ध एवं परीक्षण योग्य सिद्धान्त भी हैं। उदाहरणार्थ, उस सिद्धान्त को लिया जा सकता है जिसके अनुसार, "औद्योगिक समाजों में सामाजिक गतिशीलता की मात्रा इस समाज में हासिल किये गये औद्योगीकरण की मात्रा के अनुसार प्रत्यक्षतः बदलती रहती है।" यह कथन सैद्धान्तिक हैं– अर्थात् यह तथ्य के बारे में नहीं कहता, अपितु एक अचल सम्बन्ध को दर्शाता है– यह आनुभविक या प्रयोगसिद्ध है एवं यह कारणात्मक है। यह सच नहीं भी हो सकता है, पर वह दूसरा विषय है।

समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में आधुनिक प्रवृत्तियाँ (Recent Trends in Sociological Theories)

समाजशास्त्र एक विज्ञान है। समाजशास्त्रीय सिद्धान्त वैज्ञानिक सिद्धान्त की श्रेणी में ही आते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण होने के कारण सिद्धान्तकार आज भी पहले की भाँति तात्विक या दार्शनिक आधारों पर ही नहीं अपितु निरीक्षण परीक्षण, प्रयोग व वर्गीकरण की पद्धति को अपनाते हुए वास्तविक, पर्याप्त व निर्भर योग्य तथ्यों के आधार पर आनुभविक सामान्यीकरण के द्वारा ऐसे सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने में रूचि ले रहे हैं जो घटनाओं के कार्य–कारण

सम्बन्ध को तर्कसंगत रूप में स्पष्ट कर सकें।

NOTES

समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के क्षेत्र में आधुनिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले सिद्धान्तकारों में मर्टन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी प्रख्यात कृति 'Social Theory and Social Stracture' का अध्ययन करने पर कुछ अन्य आधुनिक प्रवृत्तियों का भी पता चलता है। उनमें से यह है कि आज सामाजिक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तों की अपेक्षा आधुनिक सिद्धान्तकारों की रूचि 'मध्य अभिसीमा के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त' को प्रतिपादित करने की दिशा में बढ़ती जा रही है। मर्टन एक और आधुनिक प्रवृत्ति समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का संकेतन की ओर संकेत करते हैं। आपके ही शब्दों में ''संकेतन अनुसंधान के फलदायक तरीकों एवं मौलिक जाँच–परिणामों की क्रमबद्ध तथा सुसंहत व्यवस्था है। इस प्रक्रिया द्वारा भूतकाल के अनुसंधान में जो कुछ निर्विवाद है उसका समीकरण एवं संगठन सम्भव होता है, न कि शोध के नये दांव–पेंचों की खोज।'' आज इसीलिये समाजशास्त्रीय सिद्धान्तकार अपने सिद्धान्तों में बड़ी–बड़ी वर्णनात्मक मान्यताओं, मौलिक तर्क–वाक्यों और जाँच परिणामों को कुछ व्यवस्थित व सुसंहत प्रतीकों या संकेतों द्वारा व्यक्त करते हैं। ताकि शब्दों के मायाजाल में फँसकर वास्तविक निष्कर्ष कहीं स्पष्ट न हो जाये। आधुनिक समय में समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों को पहले से अधिक तकनीकी स्तर पर लाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

सिद्धान्तीकरण के स्तर (Level of Therization)

सिद्धान्त किसी भी बात की पुष्टता को प्रकट करता है। एक सिद्धान्त अनेक कथनों एवं अवधारणाओं का यथार्थ, वैज्ञानिक एवं तार्किक संग्रह होता है। सिद्धान्त को देखा नहीं जा सकता बल्कि सिद्धान्त एक प्रक्रिया है। सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया के तत्वों को सरल शब्दों में निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

1. सबसे पहले सामाजिक घटना के सम्बन्ध में क्षेत्र कार्य के द्वारा आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं तथा उनका वर्गीकरण किया जाता है।
2. प्राप्त आँकड़ों या तथ्यों का विश्लेषण करके छोटे–छोटे कथनों का निर्माण किया जाता है।
3. इन कथनों के परस्पर अन्तर्सम्बन्धों का निर्धारण किया जाता है।

4. इन कथनों के परस्पर अन्तर्सम्बन्धों से तार्किक आधार पर सामान्यीकरण की व्याख्या।
5. इन तार्किक कथनों के माध्यम से अन्य क्षेत्रों के सामान्यीकरण के माध्यम से निर्मित कथनों की व्याख्या।
6. इस प्रकार निर्मित सिद्धान्तों के द्वारा किसी भी सामाजिक घटना को समझने की क्षमता।

NOTES

सिद्धान्त और शोध में अन्तः सम्बन्ध–

सामाजिक विज्ञानों में सिद्धान्त एवं शोध की महत्वपूर्ण भूमिका है। सैद्धान्तिक ज्ञान के अभाव में शोध कार्य करना अत्यधिक कठिन कार्य है। समाज वैज्ञानिक के मन में जब कोई कल्पना उत्पन्न होती है तो वह अपनी शोध पद्धतियों के माध्यम से उस कल्पना का परीक्षण करता है। जैसे–जैसे परीक्षण पूर्ण होते जाते हैं वैसे–वैसे कल्पना की विश्सनीयता या अविश्वसनीयता प्रमाणित होती जाती है। सिद्धान्त शोध के लिये नई समस्या, नया क्षेत्र, नया दृष्टिकोण उपलब्ध कराते हैं। सैद्धान्तिक ज्ञान के आधार पर शोधकर्ता कम परिश्रम व कम खर्च में अधिक दक्षता से अपने शोध कार्य को शीघ्र पूर्ण कर लेता है।

सिद्धान्त और शोध दोनों एक–दूसरे से अन्तः सम्बन्धित हैं। जिस प्रकार शोध कार्य सिद्धान्त पर आश्रित है उसी प्रकार सिद्धान्त भी शोध पर आधारित है। सिद्धान्त के वैज्ञानिक होने के लिये उनका परीक्षण व पुनः निरीक्षण आवश्यक होता है। सिद्धान्त के परीक्षण एवं पुनः निरीक्षण का कार्य शोध द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार सिद्धान्त व शोध एक दूसरे पर आश्रित हैं। इसके विशेष कारकों का उल्लेख निम्नवत् है–

1. सिद्धान्त शोध की उपयोगिता बढ़ा देता है।
2. यदि शोध एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त पर आधारित होता है तो निष्कर्ष भी महत्वपूर्ण होता है।
3. सिद्धान्त शोध करने के लिये मार्गदर्शन का कार्य करता है।
4. सिद्धान्त शोध की विश्वसनीयता तथा वैधता को सिद्ध करने में सहायक होता है।
5. सिद्धान्त व्याख्याओं के आधार पर घटनाओं के घटकों की भविष्यवाणी करता है।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सिद्धान्त शोध कार्य को प्रोत्साहित करता है। शोध सिद्धान्त के सूत्रीकरण करने में मार्गदर्शन करता है तथा शोध के द्वारा सिद्धान्त के स्पष्टीकरण

एवं पुनर्परिभाषित करने में भी मदद मिलती है। शोध के द्वारा नये तथ्यों के आधार पर सिद्धान्त को विकसित करने में भी मदद मिलती है।

NOTES

संरचनात्मक प्रकार्यवाद (Structural Functionalism)

समाज या संस्कृति की स्थिरता एवं निरन्तरता को बनाये रखने के समाज की इकाइयों का संगठित होकर कार्य करना अच्छा माना जाता है। यह संगठन व्यवस्था तभी संभव है जब ये विभिन्न तत्व या इकाइयाँ अपना–अपना योगदान इस संगठन या व्यवस्था को बनाये रखने में दें। यह योगदान इकाइयाँ अपनी–अपनी 'निर्धारित' या 'पूर्व निश्चित' भूमिका को करती हुए ही करती हैं या कर सकती हैं। कोई भी समाज चाहे वह आदिम समाज ही क्यों न हो, कई पीढ़ियों की निरन्तर अन्तः क्रियाओं का परिणाम होता है।

इस प्रकार यह निश्चित या निर्धारित हो जाता है कि समाज की विभिन्न निर्माणक इकाईयों की संम्पूर्ण सामाजिक संरचना (चाहे वह कितनी ही सरल व सादा क्यों न हो) में कौन–कौन सा स्थान होगा और उन्हें सामाजिक संगठन व व्यवस्था को बनाये रखने के लिये अर्थात् अन्तिम रूप में समाज की स्थिरता व निरन्तरता के लिये किस प्रकार की भूमिका अदा करनी होगी इन्हीं उन तत्वों या इकाइयों का प्रकार्य है। अर्थात् समाज के विभिन्न निर्माणक तत्व या इकाइयाँ समाज–व्यवस्था या संगठन को बनाये रखने के लिये जो निर्धारित भूमिका अदा करते हैं या अपना–अपना योगदान देते हैं उसे प्रकार्य कहा जाता है।

रैडक्लिक– ब्राउन का प्रकार्यवाद (Functionalism of Radcliff- Brown)

रैडक्लिक ब्राउन प्रमुख प्रकार्यवादी विचारक हैं। ब्राउन का मत है कि सामाजिक व्यवहार के विभिन्न पक्षों का कार्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करना नहीं बल्कि समाज की सामाजिक संरचना को बनाये रखना है। संरचना और प्रकार्य की अवधारणा का प्रयोग तभी हो सकता है जब समाज तथा जीवित सावयव को स्वीकार कर लिया जाये इस समानता को और भी विकसित रूप में प्रस्तुत करते हुए तथा प्रकार्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए रैडक्लिफ–ब्राउन ने लिखा है कि सावयव का जीवन उसकी संरचना के प्रकार्य के रूप में देखा जा सकता है।

प्रकार्य की निरन्तरता के माध्यम से ही संरचना की निरन्तरता बनी रहती है। यदि हम किसी एक भाग या अंग की विवेचना करें तो उसका प्रकार्य वह भूमिका है जो वह अदा करता

है या वह योगदान है जो वह समग्र रूप में सावयव के जीवन को देता है। ब्राउन का विश्वास है कि सावयवी व्यवस्थाओं द्वारा तीन समस्याओं को खड़ा किया गया है– रचनाशास्त्र अर्थात् संरचना का अध्ययन, शरीरशास्त्र अर्थात् प्रकार्य का अध्ययन तथा उद्विकास। ये तीनों प्रश्न या विषय सामाजिक जीवन स्तर पर भी लागू होते हैं। हम एक सामाजिक संरचना के अस्तित्व को देख सकते हैं। व्यक्ति, आवश्यक इकाईयों के रूप में, एक सम्बद्ध समग्रता के अन्तर्गत कुछ निश्चित सामाजिक सम्बन्धों द्वारा एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं।

NOTES

पारसन्स का संरचनात्मक प्रकार्यवादी दृष्टिकोण (Parsan's Structural Functional Approach)

पारसन्स ने समाज का अध्ययन करने के लिये बताया कि समाज का वास्तविक अध्ययन संरचनात्मक प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण से ही किया जाना चाहिये और इसके लिये एक संरचनात्मक प्रकार्यात्मक सिद्धान्त को विकसित करने की आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि सामाजिक व्यवस्था की वास्तविकता को तब तक ठीक नहीं समझा जा सकता जब तक उस व्यवस्था को बनाने वाली इकाइयों के प्रकार्यों को भी न समझ लिया जाये। अतः हमें सामाजिक व्यवस्था के उन विभिन्न प्रकार्यात्मक तत्वों को देखना चाहिये जो उस व्यवस्था के अधिकांश सदस्यों की कम से कम न्यूनतम प्राणीशास्त्रीय व सामाजिक मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

पारसन्स ने अपने प्रकार्यवादी दृष्टिकोण को अपनी पुस्तक 'The Social System' (1952) में भी स्पष्ट किया है। सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिये अनेक सामाजिक नियम होते हैं और इनमें से सभी नियमों के कुछ न कुछ सामाजिक प्रकार्य अवश्य ही होते हैं। उदाहरणार्थ, व्यावसायिक नियमों को ही लीजिये। इन नियमों के एक विशेष व्यवसाय के क्षेत्र में कुछ निश्चित ही प्रकार्य होते हैं जैसे– उस व्यवसाय में घुसने की दशाओं को निर्धारित करना, मालिक कर्मचारी के बीच सम्बन्धों को निश्चित करना आदि।

जेफ्री अलेक्जेण्डर का नव प्रकार्यवाद (Neo Functionalism of Jaffrey Alexander)-

अलेक्जेण्डर मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित रहे हैं इसलिये उनकी गणना नव प्रकार्यवादी के साथ–साथ नव वामपंथी मार्क्सवादियों में भी की जाती है। अलेक्जेण्डर की प्रमुख कृति "थियोरिटिकल लॉजिक इन सोशियोलॉजी" है। जो 1982–83 में चार खण्डों में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उन्होंने सैद्धान्तिक समन्वय का कार्य किया है। इसी पुस्तक के

माध्यम से अलेक्जेण्डर ने पारसन्स का विरोध प्रारम्भ किया। पारसन्स ने समाजशास्त्रीय अध्ययनों में प्रत्यक्षवाद पर बल दिया था किन्तु अलेक्जेण्डर ने इस पुस्तक के माध्यम से समाजशास्त्रीय अध्ययनों में उत्तर–प्रत्यक्षवाद पर बल दिया है।

NOTES

अलेक्जेण्डर ने पारसन्स के प्रकार्यवाद की व्याख्या एक नये स्वरूप में प्रस्तुत की है। यही अलेक्जेण्डर का नव प्रकार्यवाद है। वे पारसन्स की कुछ मान्यताओं से संतुष्ट नहीं थे। उन्हीं कमियों को दूर करने का प्रयास करते हुए अलेक्जेण्डर ने अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। अलेक्जेण्डर के इन विचारों को बिन्दुवार तरीके से संक्षेप में समझा जा सकता है–

1. प्रत्यक्षवाद का विरोध
2. क्रिया और व्यवस्था की अवधारणा
3. प्रकार्यवाद की नवीन व्याख्या

◘◘◘

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. पारसन्स के संरचनात्मक प्रकार्यवादी दृष्टिकोण की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये?
2. जे0 अलेक्जेण्डर के नव प्रकार्यवाद की व्याख्या कीजिये?

◘◘◘

संरचनात्मक एवं उत्तर संरचनावाद

संरचनावाद को सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी में सोचने का तरीका या विश्लेषण प्रयोग की विधि कहा जा सकता है। वे समुदाय जिनका विस्तार मानवीय भाषाओं, लोककथाओं के सांस्कृतिक प्रयोग व साहित्य प्रयोग तक होता है, संरचनावाद उनका क्रमबद्ध रूप में, उनके सम्बन्धों एवं सबसे छोटे अंशों के प्रकार्यों का अध्ययन एवं विश्लेषण करता है।

संरचनावाद को दुर्खीम, मार्क्स एवं क्लाउड लेवी स्ट्रॉस आदि समाजशास्त्रियों ने परिभाषित किया है इनके अनुसार भाषा और विचार ही सामाजिक संरचना की परिभाषा है।

स्थावेलेस तथा एलिसन बुल्फ के अनुसार– "विश्व के संदर्भ में जैसा हमारा अनुभव है वैसी ही सामाजिक संरचना है अर्थात् हमारे दैनिक जीवन का अनुभव ही सामाजिक संरचना का सार तत्व है।"

संरचना से सम्बन्धित समाजशास्त्री दो भागों में विभक्त है– यूरोपीय संरचनावादी एवं अमेरिकन–ब्रिटिश संरचनावादी। यूरोपीय संरचनावादी भाषा और विचार की संरचना का मूल आधार मानते हैं जबकि अमेरिकन–ब्रिटिश संरचनावादी व्यक्तियों के मध्य जो जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों को सामाजिक संरचना का आधार मानते हैं। इस सम्प्रदाय के समाजशास्त्री समाज को समझाने के लिये लोगों के वास्तविक व्यवहार को समझने पर जोर देते हैं। इनका मत है आनुभविक अध्ययन के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष ही सामाजिक संरचना का ज्ञान कराते हैं। यूरोपीय संरचनावादी विचारकों में प्रमुख विचारक लेवी स्ट्रॉस तथा माइकल फोकाल्ट हैं जबकि अमेरिकन संरचनावादियों में पीटर ब्लाऊ प्रमुख हैं। संरचनावाद मानवता के उन नियमों को तलाशने पर जोर देता है जो मानव जीवन के सभी स्तरों, चाहे वह आदिवासी जीवन का हो या आधुनिक विकसित सामाजिक जीवन का हो, में पाये जाते हैं।

मानव प्रकृति एवं सांस्कृतिक भिन्नता– सी0 लेवी स्ट्रॉस (Human Nature and Cultural Divesity- C. Levi Stravss)

लेवी स्ट्रॉस एक संरचनावादी समाजशास्त्री हैं। इनकी प्रमुख पुस्तक "द एलिमेंट्री स्ट्रक्चरस ऑफ किनशिप" हैं, जिसमें उन्होंने चचेरे–ममेरे भाई–बहनों की विवाह पद्धति का विवेचन किया है। स्ट्रॉस ने अपने सिद्धान्त का आधार दुर्खीम से लिया है। उनका सिद्धान्त संरचनात्मक विनिमय के नाम से जाना जाता है।

NOTES

स्ट्रॉस ने संरचना के तीन आधार बताये हैं इनमें प्रथम संरचना वह है जिसका निर्माण सामाजिक संस्थाओं एवं संगठनों द्वारा होता है। इन संरचनाओं को मानवशास्त्री एवं समाजशास्त्री वास्तविक मानते हैं। दूसरा वह है जिसमें संरचनाओं के मॉडल होते हैं। तीसरा, वह है जो मनुष्य के मस्तिष्क के द्वारा निर्मित होता है। नातेदारी, गोत्र, मिथक आदि की संरचनाएं मनुष्य के मस्तिष्क द्वारा निर्मित है।

स्ट्रॉस का संरचनावाद आदिम समाज व्यवस्था है। स्ट्रॉस ने मानव प्रकृति या व्यवहार के विषय में तीन नियम बताए हैं–

1. सभी सम्बन्धों में व्यक्तियों को कुछ न कुछ लागत देनी पड़ती है लेकिन इस लागत के आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों के अतिरिक्त समाज की भी कुछ लागत होती है। स्ट्रॉस इस लागत को समाज की परम्परएँ, नियम, उपनियम व रीति–रिवाज़ तथा मूल्य कहते हैं। यह सभी लागतें व्यक्ति को अपने व्यवहार करने के माध्यम से चुकानी पड़ती हैं। यदि व्यक्ति समाज के मानकों, मूल्यों और परम्पराओं का पालन नहीं करते तो वे समाज का कर्ज नहीं चुकाते हैं। अतः ऐसे व्यक्ति को समाज दण्डित करता है तथा उसकी निन्दा की जाती है।
2. व्यक्ति जो कुछ भी करता है उसके जो भी स्रोत हैं उसके निजी नहीं बल्कि इन पर समाज का नियंत्रण होता है। स्ट्रॉस ने इस समाज के भौतिक या अभौतिक स्रोत पर समाज का स्वामित्व तथा नियंत्रण बताया है तथा इनका पालन करना व्यक्ति के लिये आवश्यक है।
3. विनियम व्यवहार में पारस्परिकता होती है। इस पारस्परिकता को बनाये रखने का श्रेय समाज का होता है।

स्ट्रॉस महोदय ने जो तीन नियम बतलाये हैं उनका उद्देश्य व्यक्ति और समाज के बीच एकता स्थापित करना है।

लेवी स्ट्रॉस के संरचना सिद्धान्त का मूल आधार नातेदारी संरचना का विश्लेषण है। नातेदारी पर अध्ययन करके प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर स्ट्रॉस ने लिखा कि हमारे विचारों की जो प्रक्रियाएँ हैं वे ही हमें मनुष्य बनाती हैं। अर्थात् हम जिस प्रकार से विचार करते है ठीक विचारों के अनुसार ही अपने कार्यों को करते हैं और समाज में रहते हुए जो प्रक्रियाएँ हम करते हैं हमारी पहचान मनुष्य के रूप में होती है। स्ट्रॉस का मत है कि जो कुछ हमारा

दैनिक जीवन है व्यवसाय, रीति–रिवाज, परम्पराएं आदि इन सभी के पीछे मनुष्यों की बौद्धिक गतिविधियाँ है अर्थात् मनुष्य बुद्धिमान प्राणी होकर अपने समाज की परम्परागत जीवन जीने की कला का समावेश करता है। इस तरह सामाजिक जीवन का उद्‌गम बौद्धिक गतिविधियाँ हैं। कुछ सामाजिक तत्व सार्वभौमिक रूप से देखने को मिलते हैं। यह सार्वभौमिक तत्व ही संरचना है।

NOTES

संरचना सिद्धान्त के आधार पर लेवी स्ट्रॉस ने यह निष्कर्ष निकला कि मनुष्य के व्यवहार में कोई मूलभूत परिवर्तन आयेगा ऐसा नहीं लगता। होता यह है कि व्यवहार के पीछे जो संरचना होती है वह नहीं बदलती है। इसी प्रकार आगे आने वाले समय का व्यक्ति कितना ही तकनीकी हो जाये वह भी मनुष्य की गहन मानसिक संरचनाओं की उपज होगा।

यद्यपि स्ट्रॉस महोदय का अध्ययन आदिम समाज तक ही सीमित था फिर भी उनका विश्वास था कि सभी समाजों, जिसमें आधुनिक औद्योगिक समाज भी सम्मिलित है, इसका अध्ययन इसी संरचना पद्यति में किया जा सकता है। चूंकि स्ट्रॉस यह जानते थे कि आदिम समाज में विकृतियाँ कम ही मिलती हैं और इसमें संरचनाओं की ख़ोज भी आसानी से हो सकती है। इसलिये इन्होंने अपना अध्ययन आदिम समाजों तक ही सीमित व केन्द्रित किया है।

लेवी स्ट्रॉस एक जटिल संरचनावादी माने जाते हैं। समाजशास्त्र में उपलब्ध संरचनावाद के नाम पर जो सैद्धान्तिक व अवधारणात्मक सामग्री उपलब्ध है उन पर स्ट्रॉस का प्रभाव काफी अधिक है। इसी कारण लेवी स्ट्रॉस को संरचनावाद का जनक माना जाता है। स्ट्रॉस के अध्ययन की यह विशेषता है कि वे अपने सम्पूर्ण अध्ययन को तुलनात्मक रूप देना चाहते थे। संस्कृति बाद को अपनी चरम सीमा पर पहुंचा दिया है और विभिन्न समाजों में पायी जाने वाली सार्वभौमिकता की भी पहचान की है। इसके बावजूद भी समाज वैज्ञानिकों का मत है कि स्ट्रॉस ने केवल हाथ की सफाई बताई हैं उन्होंने अपनी व्याख्या में कहीं भी भद्‌दे तथ्यों को स्थान नहीं दिया है, वे उनकी उपेक्षा करते हैं। इन अलोचनाओं के बाद भी यह निश्चित है कि स्ट्रॉस के विश्लेषण में कई तथ्य मौजूद हैं।

उत्तर संरचनावाद– (Post Structuralism)

संरचनावाद एवं प्रकार्यवाद की कमियों को दूर करने के लिये उत्तर संरचनावाद या नव

NOTES

संरचनावाद का जन्म हुआ, समाजशास्त्र की नवीन अवधारणा के रूप में उत्तर संरचनावाद का प्रतिपादन किया गया। जिसका प्रतिपादन लेमर्ट महोदय ने किया। संरचनावाद की कमियों को कुछ विद्वानों ने आलोचना की तथा उसे नकार दिया तथा कुछ विद्वानों ने संरचनावाद में संशोधन करके उसमें व्याप्त कमियों को दूर करने तथा उसे पुनः स्थापित करने का कार्य किया। इसे ही उत्तर संरचनावाद कहते हैं।

उत्तर संरचनावाद की विशेषताएँ (Characteristics of Post Structuralism) -

उत्तर संरचनावाद की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. उत्तर संरचनावाद वस्तुनिष्ठता पर जोर देता है।
2. उत्तर संरचनावाद का जन्म परम्परागत संरचनावाद में संशोधन के परिणामस्वरूप हुआ। यह उत्तर आधुनिकता से प्रेरित एवं प्रभावित है।
3. परम्परागत संरचनावाद का सम्बन्ध आधुनिक विश्व से था जबकि उत्तर संरचनावाद का उत्तर आधुनिक विश्व की तरफ देखता है।
4. उत्तर संरचनावाद, संरचनावाद को विस्तृत स्वरूप प्रदान करता है।
5. उत्तर संरचनावाद समाज के उपेक्षित, दलित गरीब वर्ग के उत्थान हेतु प्रयास करता है।
6. उत्तर संरचनावाद समाज में एकता के स्थान पर विभिन्नता की तलाश करते हैं।
7. उत्तर संरचनावादी भाषा विज्ञान को अपने विश्लेषण का आधार बनाते हैं। लेमर्ट ने भाषा को उत्तर संरचनावाद का प्रमुख आधार माना है।

इस प्रकार संरचनावाद की व्याख्या करें तो कहना होगा कि संरचनावाद ने व्यक्ति निष्ठा से विदा ले ली है तथा अब वह वस्तुनिष्ठ की दहलीज पर खड़ा है। उत्तर संरचनावाद में यह प्रयास किया गया है कि इसका विस्तार इस प्रकार से किया जाये कि इसके अन्तर्गत कई सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों का समावेश हो सके। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आज आधुनिक संसार में जहाँ भी संरचनावाद का जुड़ाव था वह अब उत्तर संरचनावाद के रूप में परिणत हो गया।

■■■

महत्वपूर्ण प्रश्न–

1. संरचनावाद क्या है? लेवी स्ट्रॉस का संरचनावाद उदाहरण सहित समझाइये?
2. उत्तर संरचनावाद से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रमुख विशेषताएं बताइये?

NOTES

NOTES

संघर्ष के सिद्धान्त (Conflict Theories) -

इस जगत में उत्पन्न होकर जीवन व्यतीत करने वाले मानव में संघर्ष की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। संघर्ष करके जब बहुत से मनुष्य जीवनचर्या को आगे बढ़ाते हैं तो जो कुछ भी सीखते हैं। वह जीवन भर भूलता नहीं है। संघर्ष के प्रकार्य के सम्बन्ध में इसी प्रकार की अनेक बातें कही जा सकती हैं। साथ ही इस सत्य को भी हमें स्वीकार करना ही होगा कि समाज में सहयोग की भाँति संघर्ष भी स्वाभाविक ही है। संघर्ष के प्रकार्य के रूप में यदि हम परिवार को लेते हैं तो यह देखा जा सकता है कि परिवार सहयोग पर आधारित हैं और पारिवारिक जीवन प्रेम, स्नेह, त्याग तथा मेल–मिलाप की भावनाओं पर आधारित होता है। साथ ही साथ यह भी सच है कि किसी भी स्वाभाविक परिवार या पारिवारिक जीवन में शत–प्रतिशत सहयोग, प्रेम और मेल–मिलाप होगा। यह सोचना न केवल असत्य है बल्कि अस्वाभाविक भी। किसी भी परिवार में सहयोग के साथ–साथ कभी–कभी संघर्ष झगड़ा या मन–मुटाव हो ही जाया करता है। बिना इसके पारिवारिक जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त ही नहीं होता। जो बात परिवार के लिये सच है, वहीं पूरे समाज के लिये भी सच होगी। यही मनुष्य का संघर्ष का सिद्धान्त कहा जाता है।

संघर्ष का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Conflict) -

संघर्ष दूसरे व्यक्तियों, समूहों की इच्छा के विरोध, प्रतिहार या बलपूर्वक रोकने के विचारपूर्वक अर्थात् जान–बूझकर किये गये प्रयत्नों को कहते हैं।

प्रोफसर ग्रीन के शब्दों में–

"संघर्ष जान–बूझकर किया गया वह प्रयत्न है जो किसी भी इच्छा का विरोध करने, उसके आड़े, आने या उसे दबाने के लिये किया जाता है।"

गिलिन और गिलिन के अनुसार–

"संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति या समूह अपने विरोधी के प्रति प्रत्यक्षतः हिंसात्मक तरीके अपनाकर या उसे हिंसात्मक तरीका अपनाने की धमकी देकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहता है।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये हिंसात्मक

तरीके अपनाकर दूसरों की इच्छाओं को दबाना संघर्ष है।

संघर्ष के स्वरूप (Forms of Conflict)

NOTES

गिलिन और गिलिन ने संघर्ष के निम्नलिखित स्वरूपों का वर्णन किया है–

1. वैयक्तिक संघर्ष (Personal Conflict) -

संघर्ष जब दो व्यक्तियों के बीच होता है, तो उसे वैयक्तिक संघर्ष कहते हैं। घृणा, द्वेष, क्रोध, शत्रुता आदि के कारण इस प्रकार का संघर्ष हो सकता है इसके पहले कि दो व्यक्ति हिंसात्मक उपायों को अपनाएँ वे एक–दूसरे के प्रति क्रोध प्रदर्शित करते हैं।

2. प्रजातीय संघर्ष (Racial Conflict)

वैयक्तिक संघर्ष के अतिरिक्त सामूहिक संघर्ष भी इनमें से एक है। प्रजातीय संघर्ष का आधार प्रजातीय श्रेष्ठता व हीनता जैसी अवैज्ञानिक धारणा है। उदाहरण के रूप में अफ्रीका के श्वेत व श्याम प्रजातियों के बीच अक्सर जो संघर्ष होता देख सकते हैं।

3. वर्ग– संघर्ष (Class Conflict)

सामाजिक जीवन में वर्ग–संघर्ष भी एक उल्लेखनीय घटना है। कार्ल मार्क्स ने इस प्रकार के संघर्ष पर अधिक बल दिया है। समाज में दो वर्ग क्रमशः 'शोषक और 'शोषित' विरोधी वर्ग होते हैं। जब शोषक वर्ग की शोषण नीति असहनीय हो जाती है, तब एक स्तर पर इन दोनों वर्गों में संघर्ष स्पष्ट हो जाता है।

4. राजनीतिक संघर्ष (Political Confict)

इस प्रकार का संघर्ष एक राष्ट्र या देश के विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच होता है। प्रत्येक राजनीतिक दल के अपने कुछ पृथक आदर्श, सिद्धान्त और उद्देश्य होते हैं जो कि दूसरी पार्टी के बिल्कुल विरोधी हो सकते हैं और होते भी हैं। ऐसी अवस्था में राजनीतिक संघर्ष स्वाभाविक हो जाता है।

5. अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष (International Conflict)

यह भी एक राजनीतिक संघर्ष का ही विस्तृत स्वरूप है। राजनीतिक संघर्ष का क्षेत्र जब एक राष्ट्र की सीमा पर करके अन्य राष्ट्रों तक फैल जाता है तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष कहते हैं।

संघर्ष के कारण (Cavses of Conflict)

NOTES

संघर्ष के कारण के रूप में यदि देखा जाय तो सम्भावित चार प्रकार के कारण हो सकते हैं–

1. व्यक्तिगत भिन्नताएँ (Individual Differences)

जब दो व्यक्तियों के बीच में भिन्नताएँ इतनी अधिक होती हैं कि वे एक–दूसरे के साथ अनुकूलन करने में बिल्कुल ही असमर्थ हो उठते हैं तो उस स्थिति में ये व्यक्तिगत भिन्नताएँ संघर्ष का कारण बन सकती है।

2. सांस्कृतिक भिन्नताएँ (Cultural Differences)

सांस्कृतिक भिन्नताएँ भी संघर्ष का एक महत्वपूर्ण कारण हो सकती हैं। सांस्कृतिक व्यक्ति तथा समूह के जीवन की विधि को अभिव्यक्त करती हैं। अतः सांस्कृतिक भिन्नताएँ जीवन की विरोधियों का एक दूसरे में खड़ा कर देती है, जिसके फलस्वरूप संघर्ष हो जाता है।

3. स्वार्थों का भेद (Clashing Interests)

परस्पर विरोधी स्वार्थ होने पर भी संघर्ष हो सकता है। इस प्रकार का भेद जीवन का भेद जीवन के किसी भी पक्ष से हो सकता है। आर्थिक स्वार्थ आधुनिक समय में अत्यधिक समय में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उद्योगों में श्रमिकों तथा मालिकों के स्वार्थों का संघर्ष हड़ताल, तालाबन्दी आदि परिस्थितियों को जन्म देता है।

4. सामाजिक परिवर्तन (Social Change)

समाजिक परिवर्तन भी संघर्ष का एक कारण बन सकता है। सामाजिक परिवर्तन की द्रुत गति समाज को विभिन्न समूहों में बाँट देती है और इनमें से प्रत्येक समूह अपने–अपने आदर्श, मूल्य आदि विकसित कर लेता है। यह पृथकता भी संघर्ष को जन्म देती है।

मार्क्स का वर्ग संघर्ष सिद्धान्त

समाज में व्याप्त संघर्ष को कार्ल मार्क्स ने द्वान्दात्मक भौतिकवाद के रूप में प्रदर्शित किया। महान दार्शनिक हीगल के द्वान्दात्मक आत्मवाद को अस्वीकार करते हुए द्वान्दात्मक भौतिकवाद की रचना की। मार्क्स का यह मत है जिसे आत्मा, मन अथवा मस्तिष्क, कहते हैं, वह भौतिक शरीर से उत्पन्न वस्तु है, ठीक उसी प्रकार घड़ी के पुर्जों को एक निश्चित क्रम से

संयुक्त कर देने पर उनमें गति उत्पन्न हो जाती है।

मार्क्स के अनुसार सदा से ही प्रत्येक समाज में दो विरोधी वर्ग एक शोषक और दूसरा शोषित वर्ग होता है। जब शोषक वर्ग की शोषण नीति असहनीय हो जाती है, तब एक स्तर पर इन दोनों वर्गों से संघर्ष स्पष्ट हो जाता है। कम्युनिष्ट घोषणा पत्र में मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा है, "अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का ही इतिहास है। स्वतंत्र व्यक्ति तथा दास, कुलीन वर्ग तथा साधारण जनता, सामन्त तथा अर्धदास किसान गिल्ड का स्वामी तथा उसमें कार्य करने वाले कारीगर संक्षेप में, शोषक और शोषित, सदा एक दूसरे के विरोधी होकर कभी प्रत्यक्षतः तो कभी अप्रत्यक्षतः, परन्तु अनवरत् रूप में आपस में संघर्ष करते रहते हैं। इस संघर्ष का अंत प्रत्येक बार या तो समग्र समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण में होता है या संघर्षरत् वर्गों की आम बर्बादी में।

NOTES

मार्क्स का कथन है कि यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भू–सम्पत्ति के विपरीत पूँजी सदैव धन का आकार ग्रहण करती है। पूँजी का प्रथम साकार स्वरूप धन है। जब पूंजीपतियों के पास धन आ जाता है तब वे कुछ दैनिक उपभोग की वस्तुएँ बनाने लगते हैं। इस वस्तु के बनाने में श्रमिक वर्ग से कम मजदूरी देकर करते हैं तथा वास्तविक मजदूरी न देकर खूब धन इकट्ठा करते हैं। अधिकतम् धन इकट्ठा होने पर वह दानव का रूप ले लेती है जो स्वयं ही बढ़ने लगती है जो श्रमिकों के खून को धीरे–धीरे चूसती है। इस प्रकार, मार्क्स के अनुसार पूँजी वह धन है जो कि श्रमिकों का शोषण करने के लिये उपयोग में लायी जाती है। इस शोषण से ही वर्ग–संघर्ष का बीजारोपण होता है।

इस प्रकार मार्क्स इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में दिन–प्रतिदिन श्रमिक वर्ग में निर्धनता, भुखमरी और बेरोज़गारी बढ़ती जायेगी और उनकी दशा उत्तरोत्तर दयनीय होती जायेगी परन्तु सहन करने की भी एक सीमा होती है, उस सीमा के बाद श्रमिक या सर्वहारा वर्ग अपनी समस्त जंजीरों को तोड़कर पूँजीपतियों के विरूद्ध विद्रोह की भावना लेकर उठ खड़ा होगा ही। यह क्रान्ति का युग होगा। मार्क्स के अनुसार पुराने समाज के अन्त और नये समाज के जन्म के लिये क्रान्ति नितान्त आवश्यक है। अपने स्वार्थों से घिरे हुए पूँजीपति संसदीय नियमों द्वारा अपने एकाधिकार का भी परित्याग नहीं करेंगे, अर्थात् शांतिपूर्ण ढंग से उन्हें हटाया नहीं जा सकेगा, उसके लिये तो क्रान्ति ही एक सामान्य उपाय है। इस

NOTES

क्रान्ति का परिणाम होगा पूँजीवादी वर्ग या शोषक वर्ग का विनाश और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना। कम्युनिष्ट घोषणा पत्र में मार्क्स ने लिखा है, "पूँजीपतियों के साथ संघर्ष के दौरान अपनी परिस्थितियों से विवश होकर सर्वहारा अपने को एक वर्ग के रूप में संगठित करने को बाध्य होगा। एक क्रांति के द्वारा वह अपने को शासक वर्ग बनाता है और इस प्रकार उत्पादन की पुरानी अवस्थाओं को बलपूर्वक निकाल फेंकता है।"

मार्क्स का मत है कि 'वर्ग संघर्ष' आदि शब्दों से आम जनता को भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। डर तो उन पूँजीपतियों को होना चाहिये जो कि हरदम मेहनतकश जनता का खून चूस–चूसकर फल–फूल रहे हैं। डर तो उन्हें पूँजीपतियों को होना चाहिये। जिनकी समस्त शक्ति और शोषण करने का अधिकार क्रान्ति के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित होने पर धूल में मिल जायेगा।

मार्क्स सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना पर बल देते हैं, परन्तु क्रान्ति के द्वारा ही उस प्रकार की व्यवस्था की स्थापना प्रत्येक देश में अनिवार्य है। इसे मार्क्स स्वीकार नहीं करते। उन्होंने हेग कांग्रेस के बाद एमस्टर्डम में होने वाली बैठक में, समाजवादी पुनर्निर्माण के लिये सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता पर अधिकार किये जाने की आवश्यकता पर बल देते हुए यह कहा था। सामान्यतया यह कहा जाता है कि हमें अपनी संस्थाओं रीति–रिवाज़ो, परम्पराओं की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये और हम यह अस्वीकार भी नहीं कर सकते कि अमेरिका और इंग्लैण्ड जैसे कुछ ऐसे भी देश हैं जहाँ पर मजदूर शान्तिपूर्ण साधनों से अपने उद्देश्यों को पूरा करने की आशा रख सकते हैं। वर्तमान में मार्क्स का वर्ग संघर्ष सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक है। मार्क्स द्वारा प्रतिपादित वर्ग चेतना एवं वर्ग संघर्ष अभी भी पाये जाते हैं। अब इस अर्थ में मार्क्स का 'वर्ग संघर्ष' सार्थक है।

रेन्डाल कोलिंस : संघर्ष का सामाजिक परिवर्तन (Randall Collins : Conflict and Social Change)

अमेरिका के युवा समाजशास्त्री के रूप में रेन्डाल कोलिंस का नाम चर्चित है। इन्होंने अपना संघर्षवादी विचार अपनी पुस्तक ' Conflict Sociology : Towards An Explanatory Science' में प्रस्तुत किया। इन्होंने कार्ल मार्क्स, सीमेल, डोहरनडोर्फ तथा कोजर आदि विद्वानों के सिद्धान्तों के अध्ययन के बाद अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। कोलिन्स ने संघर्ष का मुख्य कारण शक्ति के स्रोतों को माना है। यह शक्ति के स्रोत व्यक्ति और समूह में निहित होता है।

परन्तु यह समाज में किसी व्यक्ति में कम एवं किसी में ज्यादा होती है। शक्ति के संसाधन के रूप में सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक को स्वीकार किया है।

NOTES

कोलिंस ने संघर्ष के मौलिक तत्व के रूप में तीन मौलिक तत्व, धन, सम्पत्ति, शक्ति और प्रतिष्ठा को माना है। प्रत्येक समाज में लोग इन तीनों तत्वों को प्राप्त करना चाहते हैं यह भी होता है कि सम्पत्ति मिलने पर प्रतिष्ठा व शक्ति अपने आप मिल जाती है जैसे पूँजीपति को प्रतिष्ठा व शक्ति अपने आप मिल जाती है। इसी प्रकार शक्ति मिलने पर धन दौलत व प्रतिष्ठा अपने आप मिल जाती है। इन शक्तियों के प्राप्त हो जाने पर सामाजिक संघर्ष होगा।

कोलिंस का मत है कि हम चाहें या न चाहें संघर्ष तो होना ही है। उनका विचार है कि समाज में कई प्रकार के व्यक्ति होते हैं जो कभी–कभी ऊपर से कुछ और अन्दर से कुछ नज़र आते हैं। अर्थात् ऊपर से भोलाभाला व्यक्ति अन्दर से इतना ईष्यालु हो सकता है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। यह सत्य है कि शक्ति व प्रतिष्ठा अपने में पूर्ण नहीं है। अर्थात् समाज में संघर्ष होना आवश्यक है।

कोलिंस महोदय ने संघर्ष के कारणों के रूप में यह कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति समाज में आपको धमकी दे रहा है तो वह यह जानता रहता है कि कोई मदद करने के लिये उसे तैयार है। इस प्रकार से इन्होंने सामान्यतया चार प्रकार के संघर्ष के स्रोतों का विवेचन किया है जो निम्नवत् है–

1. भौतिक और तकनीकी स्रोत जो संघर्ष करने में सहायक होते हैं इनमें सम्पत्ति, साधन, शिक्षा–दीक्षा, कुशलता, सर्वाधिक हथियार आदि हैं।
2. शारीरिक आकर्षण को कोलिंस ने संघर्ष में स्रोत माना है। इनके अनुसार यदि कोई पुरूष या स्त्री आकर्षक है अर्थात् वह आकर्षक तत्व जैसे सुरीला कण्ठ होना, लम्बी गर्दन, गोरा रंग, लम्बा कद इत्यादि में से कोई भी तत्व विद्यमान है तो ये वैयक्तिक गुण एक ताकतवर स्रोत का कार्य करते हैं। इतिहास गवाह है कि सुन्दर स्त्रियों को लेकर राष्ट्रों के बीच में भी संघर्ष हुए हैं।
3. संघर्ष का प्रमुख स्रोत संघर्ष में भाग लेने वाली कौम की संख्या और मिजाज भी महत्वपूर्ण होता है।

4. सांस्कृतिक संपदा भी संघर्ष के स्रोत का कार्य करती है, जिसके माध्यम से संवेगात्मक सुदृढ़ता लाई जाती है। सुदृढ़ता का एक स्रोत बन जाती है और लोगों को संघर्ष करने हेतु प्रेरित करती है।

NOTES

कोजर का सिद्धान्त

संघर्ष का प्रकार्यवाद (Theory of Coser- Conflict Functionalism)

सामाजिक संघर्ष के बारे में विभिन्न विद्वानों द्वारा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। कोजर की पुस्तक " The Functions of Social Conflict" में संघर्ष का प्रकार्यवाद लिखा है। सामाजिक संघर्ष के प्रकार्यात्मक पक्ष को उजागर करने का प्रयास किया है और दर्शाया है कि लोगों की यह आम धारणा गलत है कि सामाजिक संघर्ष के केवल विघटनात्मक परिणाम ही उत्पन्न होते हैं। वास्तव में सामाजिक संघर्ष का संगठनात्मक प्रकार्य कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

कोजर के अनुसार यह सच है कि सामाजिक संघर्ष से दो प्रकार के संभावित परिणाम उत्पन्न होते हैं–एक तो संगठनात्मक परिणाम और दूसरा विघटनात्मक परिणाम। सामाजिक संघर्ष से संगठनात्मक परिणाम उस अवस्था में नज़र आते हैं जबकि संघर्ष कर रहे विरोधी पक्षों की समान अवस्था समाज के कुछ आधारभूत मूल्यों में होती है। उदाहरणार्थ कारगिल युद्ध के दौरान भारत के सभी सम्प्रदायो, समूहों, वर्गों और राजनीतिक दलों की बीच एक सराहनीय एकता देखने को मिली थी। मातृभूमि की रक्षा सम्बन्धी मूल्य पर लोगों की समान अवस्था ही इस एकता का कारण है। आज का सामाजिक आर्थिक जीवन का विकास प्रतिस्पर्धा के कारण ही सम्भव होती है।

कोजर का दूसरा विघटनात्मक परिणाम उस अवस्था में उत्पन्न होते हैं जबकि संघर्ष कर रहे विरोधी पक्षों की कोई आस्था समाज के आधारभूत मूल्यों में नहीं होती है और वे एक दूसरे को मिटा देने का हर सम्भव प्रयास करते हैं जैसे दो सेनाओं के बीच युद्ध या समाज में दो सम्प्रदायों के बीच दंगा–फ़साद विघटनात्मक परिणामों को उत्पन्न करने वाले संघर्ष हैं।

कोजर के संघर्ष के प्रकार (Coser's Types of Conflict)

संघर्ष की व्याख्यायित करते हुए कोजर ने लिखा है कि संघर्षों में भी दो प्रकार होते हैं– क. यथार्थवादी तथा ख. अयथार्थवादी संघर्ष। वे संघर्ष जो कि कतिपय लक्ष्यों के आधार पर कुछ परिणामों के प्राप्त करने के अनुमानों से उत्पन्न अथवा विफल हुए लक्ष्यों को पुनः

प्राप्त करने की ओर निर्देशित होते हैं उन्हें यथार्थवादी संघर्ष कहते हैं। यथार्थवादी संघर्ष में दो विरोधी पक्ष अपने–अपने लक्ष्यों की प्राप्ति पर अधिक बल देते हैं, न कि दूसरे पक्ष को नष्ट कर देने पर। अर्थात् एक पक्ष का यह उद्देश्य नहीं होता कि दूसरे पक्ष को नष्ट कर दें, बल्कि अपने–अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये होता है। उदाहरणार्थ चुनाव में एक उम्मीदवार दूसरे को पराजित करने पर, दूसरा अगले चुनाव में खड़ा होकर जीतने का संघर्ष करता है। जिसे यथार्थवादी संघर्ष कहते हैं।

NOTES

दूसरा संघर्ष अयथार्थवादी है जिसमें न तो लक्ष्य स्पष्ट होता है और न ही किन्हीं विशिष्ट परिणामों को प्राप्त करने के लिये संघर्ष किया जाता है। ऐसे संघर्ष में लक्ष्य या परिणाम नहीं होता, इनमें तो आक्रमण स्वयं विरोधी पक्ष पर किया जाता है। हमें कुछ मिले या न मिले, विरोधी को नुकसान पहुँचे जिसे अयथार्थवादी संघर्ष कहते हैं।

स्पष्टतया यह कहा जा सकता है कि यथार्थवादी संघर्ष में लक्ष्य या परिणाम प्राप्ति पर अधिक बल दिया जाता है और इन लक्ष्यों को प्राप्त के साधन के रूप में संघर्ष में भाग लेने वाले पक्षों के सामने प्रकार्यात्मक विकास होते हैं। उदाहरणार्थ, अपने वेतन वृद्धि की माँग को लेकर कर्मचारीगण हड़ताल करते हैं। इसके विपरीत पूँजीपतियों को व्यवस्था और पूँजीपतियों के शोषण के विरूद्ध नकारात्मक मनोभाव से प्रेरित होकर पूंजीपतियों के विनाश के लिये श्रमिक कई प्रकार के आक्रमणशील रुख अपनाते हैं तो वह अयथार्थवादी संघर्ष होता है।

■■■

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष की विवेचना कीजिये?
2. संघर्ष की परिभाषा दीजिये तथा संघर्ष के स्वरूप एवं कारण बतलाइये?

■■■

आलोचनात्मक सिद्धान्त एवं मार्क्सवाद (Critical Theory and Marxism)

NOTES

आलोचनात्मक सिद्धान्त का मूल स्रोत संघर्ष सिद्धान्त है कार्ल मार्क्स ने संघर्ष के विषय में जितना लिखा उससे कहीं अधिक बाद के विचारकों ने संघर्ष सिद्धान्त पर लिखा। कार्ल मार्क्स का मत है, कि उत्पादन पद्धतियाँ ही वर्ग संघर्ष को जन्म देती हैं। वर्ग संघर्ष की परिणति क्रान्ति के रूप में होती है। क्रान्ति के बाद समाज में जो स्थिति उत्पन्न होती है उसमें न तो कोई वर्ग होता है और न ही कोई राज्य होता है। मार्क्स का सिद्धान्त व्यक्ति को शोषण से मुक्ति दिलाना था।

आलोचनात्मक सिद्धान्त को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–प्रथम स्वरूप यह है कि जो जर्मनी से प्राप्त होता है। स्थानीयता की दृष्टि से आलोचनात्मक सिद्धान्त की उत्पत्ति जर्मनी के फ्रेंकफुर्त से हुई है। यहाँ यह आलोचनात्मक सिद्धान्तीकरण आनुभविक और तथ्यात्मकता को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है।

दूसरा आलोचनात्मक स्वरूप अमेरिका के सिद्धान्तीकरण में मिलता है। इसका आधार आनुभविकता है। यदि इन दो स्वरूपों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखें तो ज्ञात होगा, कि यह दो स्वरूप परस्पर विरोधी हैं। जहाँ जर्मनी का आलोचनात्मक सिद्धान्तीकरण दार्शनिकता पर आधारित है, जबकि अमेरिका का आलोचनात्मक सिद्धान्त आनुभविकता पर आधारित है।

मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'क्रिटिक ऑफ पोलिटिकल इकोनोमी' में व्यक्ति के उद्धार की चर्चा उसे शोषण से मुक्ति दिलाने के संदर्भ में की है। यही आलोचनात्मक सिद्धान्त का केन्द्रीय आधार है। आलोचनात्मक सिद्धान्त का दूसरा आधार यह है कि यह सिद्धान्त मार्क्स के सिद्धान्त को व्यावहारिकता प्रदान करना चाहता है। मार्क्स स्वयं अपने सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देना चाहते थे किन्तु वे सिद्धान्त एवं व्यवहार का समागम नहीं कर पाये।

आलोचनात्मक समाजशास्त्र की मान्यताएँ (Values of Critical Socialogy)

यद्यपि समाज के द्वारा ही मनुष्य के विचारों का निर्माण होता है। आलोचनात्मक समाजशास्त्र की मान्यता है। इन मान्यताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत प्रदर्शित करते हैं–

1. मार्क्स के समाजशास्त्रीय विचार द्वन्दात्मक भौतिकवाद की जगह पर हीगल के द्वन्द्ववाद

को आलोचनात्मक समाजशास्त्र स्वीकार करता है।

2. आलोचनात्मक समाजशास्त्र समाज के उपेक्षित वर्ग के उद्धार का समर्थक है।
3. आलोचनात्मक समाजशास्त्र मनुष्य की स्वतंत्रता का पक्षधर है।
4. आलोचनात्मक समाजशास्त्र के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु सिद्धान्त और क्रिया का एक साथ अर्थात् एक रूप में अध्ययन करना है, अलग–अलग नहीं।

NOTES

फ्रेंकफुर्त स्कूल (The Frankfurt School)

आलोचनात्मक समाजशास्त्र का उद्भव फ्रैंकफुर्त स्कूल से हुआ था। समाजशास्त्रियों ने मार्क्स के सिद्धान्तों की नये सिरे से व्याख्या करने के उद्देश्य के साथ कुछ सामाजिक शोधकर्ताओं एवं दर्शनशास्त्रियों ने भी जर्मनी के फ्रैंकफुर्त नगर नामक शहर में एक संस्था प्रारम्भ की थी। इस संस्था को फ्रैंकफुर्त स्कूल कहा जाता है। इस संस्था का औपचारिक नाम "The Institute of Social Research" था। इसके प्रथम अध्यक्ष मैक्स होरखीमेर थे।

फ्रैंकफुर्त स्कूल की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ऐसे समाजशास्त्रीय सिद्धान्त का निर्माण करना था, जो अर्थव्यवस्था, मनोविज्ञान, संस्कृति और तात्कालिक पूँजीवादी समाज के मध्य स्थापित सम्बन्धों का अध्ययन कर सकें। इसका मुख्य कारण यह था कि इस स्कूल के सदस्य तत्कालीन क्लासिकल समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों से संतुष्ट नहीं थे। इन विचारकों का मत था कि ये सिद्धान्त समाज के चित्र का सही प्रस्तुतीकरण नहीं कर पा रहे हैं। इसलिये इस विचारकों ने अपना एक नया सिद्धान्त विकसित किया जो आलोचनात्मक सिद्धान्त या आलोचनात्मक समाजशास्त्र के नाम से जाना जाता है तथा उनकी यह संस्था फ्रैंकफुर्त स्कूल के नाम से समाजशास्त्र में पायी जाती है।

जुर्गेन हेबरमास के प्रमुख विचार (Main Theories of Habermas)

हेबरमास एक महान दार्शनिक, समाजशास्त्री हैं इनके विचार दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र इत्यादि विषयों में मिलते हैं। इनके प्रमुख समाजशास्त्रीय विचार तीन प्रकार हैं–

1. सार्वजनिक क्षेत्र का संरचनात्मक संप्रेषण
2. पूँजीवादी समाज में वैधकरण का संकट
3. प्रणाली और जीवन जगत

NOTES

1. सार्वजनिक क्षेत्र का संरचनात्मक संप्रेषण

सार्वजनिक क्षेत्र के विश्लेषण सम्बन्धी विचार हेबरमास ने अपनी प्रथम रचना 'स्ट्रक्चरल, ट्रांसफोर्मेशन ऑफ द पब्लिक स्फीयर' में प्रतिपादित किये हैं, सामाजिक क्षेत्र शब्द को प्रथम दृष्ट्या देखने पर लगता है कि हेबरमास ने औद्योगिक व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की विवेचना पूँजीवाद के संदर्भ में की होगी परन्तु ऐसा नहीं है। सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में हेबरमास ने 'समाज के सामाजिक जीवन को चित्रित किया है। हेबरमास कहते हैं कि एक समय ऐसा था जब लोग एक स्थान पर एकत्रित होते थे, अपने जीवन की समस्याओं को सभी के सामने प्रस्तुत करते थे, उन समस्याओं पर चर्चा करते थे, इन समस्याओं के समाधान खोजते थे। कुल मिलाकर किसी भी सामाजिक समस्या के प्रति एक जनचेतना जागृत की जाती थी। इसी जनचेतना के कारण समस्या को हल किया जाता था तथा शोषणकारी शक्तियाँ निर्बल हो जाया करती थीं। इस प्रक्रिया में जाति, धर्म, सम्प्रदाय इत्यादि तत्वों को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। समस्या का समाधान ही सर्वोपरि रहता था।

हेबरमास का कथन है कि समय परिवर्तन के साथ सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा निर्बल होने लगी। बेवर के विचारों को अपने शब्दों में हेबरमास कहते हैं, कि सार्वजनिक क्षेत्र के समापन के दो कारण रहे हैं– प्रथमतः पूँजीवाद के विकास के कारण मानव स्वतंत्रता का हनन, दूसरा नौकरशाही के विकास के कारण राज्य का व्यक्ति पर प्रभुत्व। हेबरमास को आशा है कि सार्वजनिक क्षेत्र पुनः जीवित होगा। जिससे मनुष्य फिर से स्वतंत्र होगा तथा राज्य की शक्ति में दास होगा।

2. पूँजीवादी समाज में वैधकरण का संकट

आज के समाज में आर्थिक और राजनैतिक समस्याएँ बढ़ रही हैं, किन्तु राज्य इन समस्याओं को अपने स्तर की समस्याएँ न मानकर तकनीकी समस्याएँ मानता है। जिनका समाधान इन समस्याओं के तकनीकी विशेषज्ञ अर्थात् नौकरशाह ही कर सकते हैं। वर्तमान नौकरशाही भी राजनीति की समस्याओं को अपनी समस्याएँ मानती हैं। इससे नौकरशाही में निरंकुशवाद को प्रोत्साहन मिल रहा है, तथा समस्याओं का अराजनीतिकरण हो रहा है।

आधुनिक पूँजीवादी समाज तीन भागों में विभाजित हो गया है–

आर्थिक पूँजीवादी समाज, राजनैतिक प्रशासनिक पूँजीवादी व्यवस्था तथा सांस्कृतिक पूँजीवादी

व्यवस्था 'पूँजीवादी समाज के इस वर्गीकरण को हेबरमास ने जीवन जगत के रूप में परिभाषित किया है। हेबरमास का मानना है, कि पूँजीवादी समाज की इन तीनों उपव्यवस्थाओं में वैधकरण का संकट उत्पन्न होता है। यह संकट चार प्रकार का होता है। आर्थिक संकट, वेवेकीकरण संकट, अभिप्रेरणा संकट तथा वैधकरण का संकट। इनमें अभिप्रेरणा एवं वैधकरण के संकट को अन्य दोनों संकटों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं।

NOTES

3. प्रणाली एवं जीवन जगत

हेबरमास ने प्रणाली एवं जीवन जगत की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जीवन जगत चेतना का एक क्षितिज है। जिसमें निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्र सम्मिलित होते हैं। संप्रेषण जीवन जगत के सभी कार्य–कलापों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है क्योंकि जीवन जगत में संप्रेषण के द्वारा ही मनुष्य अपने कथनों की वैधता के लिये स्वीकृति प्राप्त करते हैं। एक सामाजिककर्त्ता का वह समीपस्थ परिवेश जिससे कि वह कर्ता घिरा रहता है, उसका जीवन जगत कहलाता है। जीवन जगत को परिभाषित करते हुए हेबरमास कहते हैं कि "जीवन जगत निर्वचनात्मक प्रतिमानों का एक सांस्कृतिक रूप से परिभाषित एवं भाषागत रूप से संगठित संग्रह है।" जीवन जगत की निर्वचनात्मक प्रतिमानों के सहवर्ती के रूप में देखते हुए हेबरमास की इस अवधारणा को व्याख्याति किया गया है।

ए0 ग्राम्शी– "आधिपत्य" का "प्राधान्य" (A. Gramsci- Hegemony)

ए0 ग्राम्शी का पूरा नाम ऐन्टोनियो ग्राम्शी है। 20वीं शताब्दी के प्रमुख मार्क्सवादी विचारक हैं। ग्राम्शी ने मार्क्स के आर्थिक निर्धारणवाद एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आलोचना करके मार्क्स के विचारों की एक नये रूप में विश्लेषित किया है। ग्राम्शी ने क्लासिकता मार्क्सवाद की अनेक मान्यताओं को स्वीकार नहीं करते हैं, उन्होंने बुर्जुआ राज्य को एक नये रूप में प्रस्तुत किया है। ग्राम्शी का मत है कि राजनीति एवं विचारधारा को आर्थिक निर्धारणवाद से स्वतंत्र रखना चाहिये, जिससे स्त्री पुरूष अपने संघर्ष द्वारा अपनी परिस्थितियों को परिवर्तित कर सकें। उनका यह भी मत है कि पूँजीवादी वर्ग के प्रभुत्व को केवल आर्थिक कारक द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके लिये राजनैतिक शक्ति की आवश्यकता है और इससे भी ज्यादा विचारात्मक तन्त्र की आवश्यकता है जिससे शासित वर्गों की मौन स्वीकृत प्राप्त कर ली है। पूँजीवादी समाजों में इन तंत्रों में नागरिक, समाज, धार्मिक

संस्थाएँ, स्कूल, परिवार तथा श्रमिक संघ भी शामिल होते हैं। राजनैतिक दमन राज्य का विशेषाधिकार होता है। पूँजीवादी समाजों का स्थाई तत्व श्रमिक वर्ग पर वैचारिक प्रभुत्व होता है।

NOTES

ग्राम्शी ने "आधिपत्य" या "प्राधान्य" की अवधारणा का प्रतिपादन किया है। "आधिपत्य" से ग्राम्शी का तात्पर्य एक ऐसे सांस्कृतिक नेतृत्व से हैं जो शासक वर्ग से होता है। ग्राम्शी का मत है कि आधुनिक बुर्जुआ समाज की दृढ़ता का प्रमुख स्रोत यह शासक वर्गीय सांस्कृतिक नेतृत्व ही होता है जो जनसमुदाय पर अपनी मूल्य प्रणाली की छाप अंकित कर देता है। यह नेतृत्व परिवार, धार्मिक संस्थाओं और स्कूल आदि के माध्यम से कार्य करता है। ग्राम्शी का मत है कि जब तक मूल्यों और मान्यताओं के क्षेत्र में बुर्जुआ तत्वों के "आधिपत्य" को समाप्त नहीं किया जाता तब तक श्रमिक आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। अतः केवल आर्थिक तत्व के आधार पर समाजवाद की स्थापना सम्भव नहीं है। अतः श्रमिक आन्दोलन की सफलता के लिये वैचारिक संघर्ष की आवश्यकता है।

ग्राम्शी मूल रूप से एक मानवतावादी विचारक थे। वे किसी भी प्रकार के तानाशाह (फासीवाद) के विरूद्ध थे। इसीलिये उन्होंने मुसोलिनी शासन के दमनात्मक स्वरूप का विरोध किया। ग्राम्शी का संस्थाओं के लोकतंत्रीकरण में विश्वास था। यही कारण था कि उन्होंने श्रमिकों के प्रजातान्त्रिक आन्दोलन का समर्थन किया। ग्राम्शी एक ऐसे स्वचालित नियन्त्रित समाज के समर्थक थे जहाँ दमन या शक्ति का कोई स्थान न हो।

अन्तः क्रियावादी दृष्टिकोण– प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद (Interactionist Perspective-Symbolic Interactionism)

'प्रतीकात्मक' एक अत्यधिक व्यापक अवधारणा है जिसके अन्तर्गत वे सभी संकेतन आ जाते हैं जिनकी सहायता से हम सामाजिक जीवन से सम्बद्ध विभिन्न विचार, भाव आदि को व्यक्त करते हैं। एक निश्चित प्रतीक का हम इस प्रकार व्यवहार करते हैं कि उससे दूसरे लोगों तक कुछ विशेष प्रकार के भाव अथवा विचार संचरित हो जाते हैं। इसी को प्रतीकात्मवाद कहते हैं।

प्रतीकात्मकवाद का अर्थ

प्रतीकात्मकवाद प्रतीकों को व्यवहार में लाने की एक विधि या नियम की ओर संकेत करता है। इस प्रकार प्रतीकात्मकवाद का प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रतीक से है। 'प्रतीक' शब्द से ही

स्पष्ट है कि बहुधा व्यक्ति जो कुछ भी व्यक्त करना है, उसके समग्र वह साफ–साफ व्यक्त नहीं करता है, वरन् विभिन्न चीजों तथा भावों को व्यक्त करने के लिये कुछ ऐसे चिन्हों या प्रतीकों का व्यवहार करता है जिनके माध्यम से वह अपने वास्तविक भाव की ओर देखने या सुनने वालों को संकेत करता है। देखने या सुनने वाले इन चिन्हों, प्रतीकों या संकेतों से ही यथार्थ की कल्पना कर लेता है। इसी प्रकार प्रतीकात्मकवाद के उदाहरण स्वरूप विभिन्न देवी–देवताओं को मानते हैं। देवी सरस्वती विद्या की प्रतीक है, दुर्गा माता शक्ति का प्रतीक है, ब्रह्मा जी सृष्टि के प्रतीक हैं, लक्ष्मी जी धन का प्रतीक हैं और गणेश जी सिद्धि तथा कल्याण के प्रतीक हैं।

NOTES

प्रतीकात्मकवाद की विशेषताएँ (Characteristics of Symbolism)

प्रतीक कुछ विचारों, वस्तुओं तथा भावों का स्थानापन्न होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रतीकों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह होती है कि ये सामाजिक जीवन में अन्तःक्रियाओं के दौरान पनपते या विकसित होते हैं। ऊपरी तौर पर देखने से इनका कोई खास महत्व प्रतीत नहीं होता है, पर जिस समूह या समाज में इनका प्रचलन होता है उसके सदस्यों के लिये महत्व वास्तविक रूप में अत्यधिक होता है। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय झण्डे की मर्यादा–रक्षा करने के लिये कितने ही वीर जवान अपनी जान की बाजी लगा देते हैं। इसका कारण यह है कि वह झण्डा कपड़े का एक सामान्य टुकड़ा नहीं है, वह तो राष्ट्रीय जीवन का सामूहिक प्रतिनिधित्व करने वाला एक सामाजिक तत्व है।

प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावाद

व्यक्ति समाज में न तो अकेला है और न ही अकेले क्रिया करता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में वह दूसरों के सम्पर्क में आता है और दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। व्यक्ति के विचार, भावनाएँ यहाँ तक कि प्रतिक्रियाएँ भी इन दूसरे व्यक्तियों से संचारित होती हैं, और दूसरों से उसे यह सब प्राप्त भी होता है। व्यक्ति अपने आस–पास के लोगों को उत्तेजित करता है और उनके द्वारा स्वयं भी उत्तेजित होता है। व्यक्ति की अधिकांश क्रियाएँ या व्यवहार 'सामाजिक' होते हैं। क्रिया के प्रत्युत्तर में क्रिया करना अन्तःक्रिया है। यह क्रिया वैयक्तिक क्रिया भी हो सकती है और सामूहिक क्रिया भी। इसलिये अन्तःक्रिया व्यक्ति और व्यक्ति में, व्यक्ति और समूह में तथा समूह और समूह में हो सकती है।

अन्तःक्रिया का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Interaction)

NOTES

जब व्यक्तियों की क्रियाएँ एक–दूसरे की क्रियाओं के संदर्भ में तथा उनसे प्रभावित होते हुए घटित होती हैं तो उस प्रक्रिया को अर्थात् क्रिया के प्रत्युत्तर को अन्तःक्रिया कहते हैं।

किम्बल यंग के अनुसार–

"विस्तृत रूप में परिभाषित करते हुए हम कह सकते हैं कि अन्तः क्रिया इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि व्यक्ति की प्रतिक्रिया हाव–भाव, शब्द या स्थूल शारीरिक गति दूसरे व्यक्ति को उत्तेजित करती है, और यह दूसरा व्यक्ति अपनी बारी प्रथम व्यक्ति के प्रति प्रतिक्रिया करता है।"

गिस्ट के अनुसार–"सामाजिक अन्तःक्रिया वह पारस्परिक प्रभाव है जो मनुष्य अन्तः उत्तेजना तथा प्रक्रिया द्वारा एक दूसरे पर डालते हैं।"

इस प्रकार क्रिया के प्रत्युत्तर में क्रिया को अन्तःक्रिया कहते हैं। जब एक क्रिया के कारण दूसरी क्रिया घटित होती है तो यह स्पष्ट है कि प्रथम क्रिया का प्रभाव दूसरी क्रिया पर और दूसरी का प्रथम तथा तृतीय क्रिया आदि पर अवश्य ही पड़ता है। इसीलिये अन्तःक्रिया की परिभाषा में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि जब व्यक्तियों की क्रियाएँ एक–दूसरे की क्रियाओं के संदर्भ में तथा उनसे प्रभावित होते हुए घटित होती हैं, तो इस घटना को 'अन्तःक्रिया कहते हैं।

प्रतीकात्मक अन्तर्क्रियावादी सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Sybolic Interactional Theory)

प्रतीकात्मक अन्तक्रिर्यावादी सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएँ निम्नांकित हैं–

1. यह सामाजिक संगठन को एक सावयवी प्रक्रिया मानता है।
2. समाजिक संरचनाएँ तथा अन्तर्क्रियाएँ अनिवार्यतः सवयविक व गतिशील प्रकृति की होती हैं।
3. समाजिक जीवन का अध्ययन अन्तक्रिया कई वैयक्तिक इकाइयों पर केन्द्रित होना चाहिये।
4. सामाजिक संगठन का विकास सामाजिक जगत के बारे में व्यक्तियों के पारस्परिक निर्वाचन, मूल्यांकन, परिभाषा व मानचित्रों द्वारा होता है न कि व्यवस्था की शक्तियो, सामाजिक आवश्यकताओं व संरचनात्मक क्रियाविधि द्वारा।

जार्ज हरबर्ट मीड का प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद (Symbolic Interactionismof George Herber Meod)

NOTES

मीड ने अपने समाजशास्त्र को 'सामाजिक मानवशास्त्र' कहा था। जिसका कि प्रमुख कार्य समाज व व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों का अध्ययन करना है। इन सम्बन्धों का आधार मानवीय अन्तःक्रिया से है। इन मानवीय अन्तःक्रियाओं में सामाजिक उत्तेजना का महत्व अत्यधिक होता है। वास्तव में जब एक व्यक्ति की प्रतिक्रिया दूसरे व्यक्ति को उत्तेजना देती है, तभी सामाजिक अन्तःक्रियाएँ घटित होती हैं। इस अर्थ में सामाजिक उत्तेजनाएँ सामाजिक अन्तःक्रियाओं का साधन या माध्यम हैं। ये उत्तेजनाएँ दो प्रकार की होती हैं– प्राथमिक तथा द्वितीयक। जब प्रत्यक्ष सम्बन्ध या सम्पर्क के आधार पर व्यक्ति किसी दूसरे को उत्तेजना प्रदान करता है, तो उसे प्राथमिक उत्तेजना कहते हैं। इसके अन्तर्गत हाव–भाव, चेहरे की अभिव्यक्ति, शारीरिक आसन, भाषा, हँसी आदि आती है। द्वितीयक उत्तेजना वे हैं जिनमें व्यक्ति दूर रहकर संचार के विभिन्न साधनों द्वारा दूसरों को प्रभावित करता है।

मानवीय अन्तःक्रिया में हाव–भाव के महत्व को लिया जाता है। हाव–भाव शरीर के किसी भी भाग को ऐसी गति कहते हैं, जो व्यक्ति की मानसिक स्थिति को व्यक्त करती हैं, हाव–भाव की ऐसी गति होती है, जो व्यक्ति की मानसिक स्थिति को व्यक्त करती है, हाव–भाव के द्वारा ही छोटे बच्चे बहुत कुछ कह सकते हैं। प्रायः हम अचेतन रूप में जिन हाव–भावों को प्रकट करते हैं, वे हमारे वास्तविक विचारों तथा मनोवृत्तियों को शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त विचारों तथा मनोवृत्तियों से भी अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त कर सकते हैं।

हरबर्ट ब्लूमर का प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद (Symbalic Interaction of Herbaert Blumer)

ब्लूमर यह चाहते हैं कि समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिये एक ऐसा पद्धतिशास्त्र विकसित किया जाये जो कि मानवीय अन्तःक्रिया को उचित मान्यता दे सके। केवल कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित करना विषय को अत्यन्त सरल बना देना होगा। उदाहरणार्थ, यह दावा किया जाता है कि उद्योगीकरण ने संयुक्त परिवारों को एकाकी परिवारों में बदल दिया है। इस प्रकार का कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित करना न केवल अनुचित है, अपितु अवैज्ञानिक भी। ब्लूमर के अनुसार स्वयं उद्योगीकरण ने संयुक्त परिवार को विघटित नहीं किया है। यह विघटन तो उद्योगीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों एवं पारिवारिक जीवन के बारे में लोगों द्वारा लगाये गये अर्थों व व्याख्याओं के फलस्वरूप घटित हुआ है।

NOTES

उद्योगीकरण ने जिन परिस्थितियों को उत्पन्न किया है उनमें पारिवारिक सदस्यों के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं का परम्परागत स्वरूप बदल गया है। परिवार से बाहर सामाजिक अन्तःक्रियाओं के स्वरूप भी बदले हैं। फलतः पारिवारिक जीवन की परिभाषा भी बदली है। इस बदले हुए अर्थ या परिभाषा में संयुक्त परिवार 'फिट' नहीं बैठता है। इस कारण उसके स्वरूप को भी बदलना पड़ा है। दूसरे शब्दों में, परिवर्तित अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गत जब पारिवारिक जीवन की व्याख्या ही बदल जाती है तो परिवार का पुराना स्वरूप अर्थात् संयुक्त परिवार अर्थहीन हो जाता है और उसे एक नया अर्थ देने के लिये एकाकी परिवार का उदय होता है। इस प्रकार संयुक्त परिवार के स्थान पर एकाकी परिवार का आना वास्तव में बदली हुई अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया के संदर्भ में पारिवारिक जीवन को दिये गये अर्थों का ही प्रतिफल है।

अतः ब्लूमर का सुझाव है कि "समाजशास्त्रीय शोधकर्ताओं को कुछ बने बनाये पूर्व निर्धारित निष्कर्ष में ही अपने अध्ययन परिणामों को 'फिट' करने का प्रयास न करके कर्ता लगाये गये अर्थों को समझना होगा और इसके लिये उन्हें उस क्रियारत इकाई की भूमिका को अदा करना होगा जिसके व्यवहार का अध्ययन वे कर रहे हैं।

ब्लूमर ने अन्तःक्रिया की निम्नलिखित विशेषताएँ बतलाई हैं–

1. अन्तःक्रिया की अवस्था में प्रतीकात्मक रूप से व्यक्ति "स्व" को वस्तु के समान रखता है। दूसरे व्यक्ति के संकेत भी वस्तु के समान स्थिति के बीच लाए जाते हैं।
2. सामाजिक नियम, प्रतिमान, मूल्य आदि प्रत्याशाएँ वस्तु के समान स्थिति के बीच प्रतीकात्मक रूप से लाई जाती हैं।
3. मनुष्य में प्रतीक सृजन की क्षमता है इसलिये वस्तु के रूप में कोई भी प्रतीक स्थिति के बीच वह ला सकता है। ■■■

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. आलोचनात्मक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये? हेबरमास के प्रमुख विचारों का उल्लेख कीजिये?
2. ए0 ग्राम्शी के "आधिपत्य" या "प्राधान्य" की विवेचना कीजिये?
3. अन्तः क्रियावाद क्या है? प्रतीकात्मक अन्तः क्रियावादी दृष्टिकोण की विवेचना कीजिये?

इकाई–पंचम्

समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में आधुनिक प्रवृत्तियाँ (Recent Trends in Sociological Theories)

NOTES

समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों को काल के दृष्टिकोण से मुख्यतः दो श्रेणियों में रख सकते हैं– समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धान्त एवं उत्तर आधुनिक सिद्धान्त। समकालीन को आधुनिक समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति के अन्तर्गत ही रखते हैं। यद्यपि अध्यायों को पूर्णता प्रदान करने के क्रम में कुछ आधुनिक सिद्धान्तों का भी विवेचन किया जा चुका है। समाज एक परिवर्तनशील अवधारणा है। सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करके प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर ही समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का निर्णय होता है।

समाजशास्त्र के विषय में एक आम धारणा यह बन चुकी थी कि समाजशास्त्र एक अनुपयोगी, अत्यन्त सरल एवं विषयों की पूर्ति करने वाला एक विषय है। इसका एक कारण यह भी था कि समाजशास्त्र की अध्ययन सामग्री परम्परागत अध्ययन पर आधारित थी। परन्तु आधुनिक समाजशास्त्रियों के समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के उद्भव एवं विकास ने इस धारणा को समाप्त किया है। आज समाजशास्त्र के अध्ययन–अध्यापन के प्रति जिज्ञासा बढ़ी है, साथ ही यह विषय अधिक उपयोगी एवं रोचक हो गया है। इसका क्षेत्र आधुनिक समाजशास्त्रियों को जाता है, जिन्होंने परम्परागत समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का खण्डन करके वर्तमान समय के प्रसंग में समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों की प्रतिस्थाना की है।

एंथनी गिड्डेन्स–संरचनाकरण सिद्धान्त (Anthony Giddens- Theory of Structuration)

महान आधुनिक समाजशास्त्री एंथनी गिड्डेन्स ने आधुनिक समाजशास्त्र को प्रदर्शित करके अपने समाजशास्त्रीय पुस्तकों में उल्लेखित किया। एक आधुनिकता से समाजशास्त्र के सामाजिक वर्ग एवं सामाजिक स्तरीकरण, सामाजिक परिवर्तन, पूँजीवाद, आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता पर पर्याप्त मात्रा में लिखा है। सन 1982 में लिखी गई पुस्तक 'Sociology' आधुनिक समाजशास्त्र का गहन विश्लेषण करती है, अतः इस पुस्तक का बाज़ार में उतरते ही विश्वव्यापी स्वागत हुआ।

गिड्डेन्स ने प्रकृतिवाद, प्रत्यक्षवाद, प्रकार्यवाद, उद्विकासवाद। इविंग गॉफमैन के अन्तः क्रियावाद और क्लाउड लेवी स्ट्रास के संरचनाकरण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। संरचनाकरण का सिद्धान्त पूर्ण रूप से उनकी दो कृतियों में व्याप्त है– The Constitution of Society outline of

the theory of Structuration and Profiles and Critiques in social Theory गिड्डेन्स ने संरचनाओं को दुर्खीम की भाँति बाध्यता अथवा दबाव के रूप में न देखकर, एक दूसरे के पूरक के रूप में देखा है। इस दृष्टि से उन्होंने साधन और संरचना के संबन्धों को द्वयात्मकता के रूप में देखा है, अर्थात् एक दूसरे के बिना इनका कोई अस्तित्व नहीं। मानव व्यवहार के द्वारा संरचना का निर्माण होता है। मानव व्यवहार बदलते हैं तो संरचना भी परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार संरचना बनती–बिगड़ती रहती है अर्थात् संरचना निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है। यही एंथनी गिड्डेन्स का संरचनाकरण है।

NOTES

गिड्डेन्स ने "विवेचनात्मक समाजशास्त्र" के अन्तर्गत कई नवीन प्रवृत्तियों को प्रतिपादित किया गिड्डेन्स के विचारों में समीक्षा का पुट है तथा विश्लेषण अभिव्यक्ति को तर्कपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करने की विलक्षण प्रतिभा है। संरचनाकरण सिद्धान्त की पृष्ठभूमि निर्माण में उसने ब्रिटिश तथा अमेरिकी दार्शनिक के कर्म सिद्धान्त में व्याप्त असंगति की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

सामाजिक क्रियाएँ समय एवं स्थान में घटती हैं। गिड्डेन्स के अपने संरचनाकरण के सिद्धान्त को "प्रकार्यवादी घोषणापत्र कहा है। उसका मत है कि मानव इच्छाओं से मानव इतिहास का पलायन तथा उस पलायन के परिणामों की मानव क्रिया पर कारणात्मक प्रभावों के रूप में वापसी सामाजिक जीवन की प्रमुख विशेषता है। किन्तु प्रकार्यवाद उस वापसी की समीक्षा पुनरुत्पादित सामाजिक तत्वों के अस्तित्व के लिये "समाज के तर्क" के रूप में किया है। गिड्डेन्स के संरचनाकरण सिद्धान्त की मान्यता है कि सामाजिक व्यवस्थाओं का उद्देश्य कारण या आवश्यकता नहीं होती है। केवल व्यक्ति ही संरचनाकरण करता है।

देशकाल सम्बन्धी विचारों को ध्यान में रखते हुए गिड्डेन्स ने लिखा है कि काल तथा स्थान की व्याख्या अनुभव को धारण करने वाले संदर्भ के रूप में नहीं की जा सकती क्योंकि काल तथा स्थान को वस्तुओं और घटनाओं के संदर्भ में नहीं समझा जा सकता है। काल एवं स्थान में वस्तुएँ तथा घटनाएँ विद्यमान रहती है, या घटती है।

क्रिया या अभिकरण (Action)

गिड्डेन्स ने क्रिया या अभिकरण के विच्छिन्न कार्यों का "आचरण का निरन्तर प्रवाह" माना है। गिड्डेन्स सभी सामाजिक व्यवहारों को सामयिकता, प्रत्ययात्मकता तथा स्थानीयता

इन तीन अर्थों में 'स्थित व्यवहार' की संज्ञा देने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि क्रिया की व्याख्याकर्ता या अभिकरण ''कार्यरत स्व'' के संदर्भ में की जा सकती है। जहाँ–जहाँ कार्य है, वहाँ–वहाँ कर्ता है। क्रिया की दूसरी विशेषता यह है कि किसी भी निर्दिष्ट काल बिन्दु में अभिकरण या कर्ता की अन्य दूसरी क्रिया सकारात्मक या नकारात्मक होती है। इसी कारण से गिड्डेन्स ने क्रिया की अवधारणा में ''ऐतिहासिक दृष्टि से स्थित क्रिया–स्वरूप'' शब्द का प्रयोग किया है।

NOTES

संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य (Structural Perspective)

समाजशास्त्र के अन्तर्गत संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य को गिड्डेन्स ने बताया कि ''प्रत्येक सामाजिक कर्ता समाज के, जिसका वह सदस्य है, पुनरूत्पादन की दशाओं के बारे में बहुत अधिक जानकारी रखता है। उनका मत है, कि सभी सामाजिक कर्ताओं को जिस सामाजिक व्यवस्था का वे निर्माण करते हैं या पुनरुत्पादन करते हैं, उसका ज्ञान होता है। यह संरचना के द्वैत अवधारणा की एक आवश्यक विशेषता है। इस संदर्भ में वह व्यावहारिक चेतना जिस पर कर्ता सामाजिक क्रिया की रचना में विवेचनात्मक चेतना से अन्तर व्यक्त करता है। कर्ताओं में पाये जाने वाले विमर्शात्मक या तर्कमूलक अन्तः प्रवेश की प्रकृति एवं विषय क्षेत्र में गिड्डेन्स ने काफी महत्वपूर्ण माना है और इसे सामूहिकता में नियंत्रण का द्वन्द्व कहा है।

गिड्डेन्स के संरचनाकरण सिद्धान्त की मान्यताएँ निम्नवत् हैं–

1. संरचनाकरण कालिक आयाम को अपने विश्लेषण के केन्द्र में रखने की कोशिश करता है।
2. संरचनावाद सामाजिक पुनरुत्पादन के सिद्धान्त पर जोर देता है।
3. संरचनावाद वस्तु तथा विषय के द्वैत को अतिक्रमण करने का प्रयत्न करता है।
4. संरचनावाद सिद्धान्त ने सांस्कृतिक वस्तुओं के उत्पादन के विश्लेषण में स्थायी योगदान किया है।
5. संरचनावाद प्रकार्यवाद की तुलना में सामाजिक सम्पूर्णता या समग्रता के अधिक उपर्युक्त एवं संतोषप्रद अवबोधन का निरूपण करता है।

सिद्धान्त की समीक्षा (Critique of Theory)

गिड्डेन्स ने संरचनाकरण का सिद्धान्त प्रस्तुत करके एक नई विचारधारा को

समाजशास्त्र के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। अनेक समाजशास्त्रियों ने इसे समाजशास्त्रीय सिद्धान्त निर्माण की दिशा में ठोस क़दम बताया है किन्तु आलोचनात्मक विचारधारा भी उभरकर सामने आयी है–

NOTES

1. थॉम्पसन एवं आर्चर का मानना है कि गिड्डेन्स का यह कथन तो सही है कि साधन, संरचना से ही क्रिया करने की क्षमता ग्रहण करते हैं। किन्तु इस बात को गिड्डेन्स ने स्पष्ट नहीं किया कि संरचना किस भाँति साधन पर इस तरह की क्रिया करने के लिये दबाव भी डालती है। थॉम्पसन एवं आर्चर ने इसे द्वयात्मकता के स्थान पर द्वैतवाद के रूप में देखा है। अर्थात् साधन एवं संरचना का एक दूसरे से पृथक भी अस्तित्व हो सकता है।
2. कुछ आलोचकों का यह मानना है कि गिड्डेन्स का संरचनाकरण, आनुभाविकता से परे, मात्र शब्दों का हेर–फेर है। ग्रेगसन ऐसे ही आलोचक हैं।
3. कुछ आलोचकों ने तो यहाँ तक माना है कि गिड्डेन्स के संरचनाकरण में कुछ भी नया नहीं, बल्कि कहीं–कहीं यह पारसंस के प्रकार्यवाद की नकल महसूस होता है।

■■■

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. एंथनी गिड्डेन्स के संरचनाकरण के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
2. समाजशास्त्रीय सिद्धान्त में आधुनिक प्रवृत्तियों के आधार पर संरचनाकरण की विवेचना कीजिये?

■■■

Bibliography

Battomore, T.B. :

"Sociology".

Bierstedt Robert :

"American Sociological Theory".

Gillin an Gillin :

"Cultural Sociology".

Giddenes; Anthony :

"New Rules of Sociological Method".

Sorokin, P.A. :

" Society, Culture and Personality".

Weber, Max :

"Social and Economic Orgnization".

Wilson, John, B. :

"Social Theory".

Wilson Vine Margret :

" An Introduction to Sociology Theory".

NOTES